

श्री भवतामर स्तोत्र (भाषा)

आदिपुरुष अदीश जिन, आदि सुविधि करतार।

धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार॥

सुर-नत-मुकुट रतन-छवि करै, अंतर पाप-तिमिर सब हरै।

जिनपद बंदों मन वच काय, भव-जल-पतित उधरन-सहाय ॥१॥

श्रुत-पारग इंद्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव।

शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभुकी वरनों गुन-माल ॥२॥

विबुध-वंद्य-पद मैं मति-हीन, हो निर्लज्ज थुति-मनसा कीन।

जल -प्रतिबिम्ब बुद्ध को गहै, शशि-मंडल बालक ही चहै ॥३॥

गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुर-गुरु पावैं पार।

प्रलय-पवन-उद्धृत जल-जंतु, जलधि तिरे को भुज बलवंतु ॥४॥

सो मैं शक्ति-हीन थुति करूं, भक्ति-भव-वश कछु नहिं डरूं।

ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तब भक्ति बुलावे राम।।

ज्यों पिक अंब-कली-परभाव, मधु-ऋगु मंधुर करै आराव ॥६॥

तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम जनम के पाप नशाहिं।।

ज्यों रवि उगै फटै ततकाल, अलिवत नील निशा-तम-जाल ॥७॥

तव प्रभावते कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार।।

ज्यों जल-कमल पत्रपै परै, मुक्ताफलकी दुति विस्तरै ॥८॥

तुम गुन-महिमा हत-दुख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष।।

पाप-विनाशक हैं तुम नाम, कमल-विकाशी ज्यों रवि-धाम ॥९॥

नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत, तुमसे तुम गुण वरणत संत।।

जो अधनीको आप समान, करै न सो निंदित धनवान ॥१०॥

इकट्क जन तुमको अविलोय, अवर-विषे रति करै न सोय।
 को करि छीर-जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान ॥११॥

प्रभु तुम वीतराग गुन-लीन, जिन परमाणु देह तुम कीन।
 हैं तितने ही ते परमाणु, यातै तुम सम रूप न आनु ॥१२॥

कहैं तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग-नयन-मनहार।
 कहौं चन्द्र-मंडल सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक ॥१३॥

नागच-छंद

पूरन-चंद-ज्योति छविवंत, तुम गुन तीन जगत लंधंत ।
 एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचारत को करै निवार ॥१४॥

जो सुर-तिय विभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ।
 अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु शिखर डगमगैं न धीर ॥१५॥

धूमरहित वाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन-घर एह।
 वात-एम्ब नाहीं परचंड, अपर दीप तुम बलो अखंड ॥१६॥

छिपहु न लुपहु राहुकी छाँहिं, जग-परकाश हो छिनमांहिं।
 घन अनवर्त दाह विनिवार, रवितै अधिक धरो गुणसार ॥१७॥

सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित नेह राहु अविरोह।
 तम मुख-कमल अपूरव चंद, जगत-विकाशी जोति अमंद ॥१८॥

निश-दिन शशि रवि को नहिं काम, तुम मुख-चंद हैर तम-धाम।
 जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तो कौनहु काज ॥१९॥

जो सुबोध सोहै तुममाहिं, हरि नर आदिक में सो नाहिं॥
 जो दुति महा-रतन मे होय, कांच-खंड पावै नहिं सोय ॥२०॥

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया।
 स्वरूप जाहिं देख वीतराग तू पिछानिया ॥

कछू न तोहिं देखके जहाँ तुही विशेखिया।
मनोग चिल्ल-चोर और भूल हुँ न पेखिया॥२१॥

अनेक पुत्रबंतिनी नितंविनी सपूत है।
न तो समान पुत्र और मातृते प्रसूत है॥

दिशा धरंत तारिका अनेक कोटिको गिनै।
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै॥२२॥

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो।
कहें मुनीश अंधकार-नाशको सुभान हो॥

महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके।
न और मोहि मोखपंथ देय तोहिं टालके॥२३॥

अनंत नित्य चिल्लकी अगम्य रम्य आदि हो।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो॥

महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो॥२४॥

चौपाई

तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतै।।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतै।।
तूही विधात हैं सही सुमोखपंथ धारतै।।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतै॥२५॥

नमों करुं जिनेश तोहि आपदा निवार हो।।
नमों करुं सु भूरि भूमि-लोक के सिंगार हो।।
नमों करुं भवाव्य-नीर-राशि-शोष-हेतु हो।।
नमों करुं महेश तोहिं मोखपंथ देतु हो॥२६॥

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्वकरि तुम परिहरे।
और देव-गण आश्रय पाय, स्वप्न न देखो तुम फिर आय ॥२७॥

तरु अशोक-तर किरन उदार, तुम तन शोभित हे अविकार।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहंत ॥२८॥

सिंहासन मनि-किरन-विचित्र, तापर कंचर - वरन पवित्र।
तुम तन शोभित किरन-विथार, ज्यो उदयाचल रवितम-हार ॥२९॥

कुंद - पुहुप - सित - चमर दुरंत, कनक-वरन तुम तन शोभंत।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झैर नीर उमगांति ॥३०॥

ऊंचे रहे सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपै अगोप।
तीन लोक की प्रभुता कहै, मोती-झालरसों छवि लहै ॥३१॥

दुंदुभि-शब्द गहर गंभीर, चहँदिशि होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन-जन शिव-संगम करै, मानूँ जय जय रव उच्चरै ॥३२॥

मंद पवन गंधोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पुहुप-सुवृष्ट।
देव करै विकसित दल सार, मानों द्विज-पंकति अवतार ॥३३॥

तुम तन-भामंडल जिनचंद, सब दुतिवंत करत है मंद।
कोटि शंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय ॥३४॥

स्वर्ग - मोख - मारग संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत।
दिव्य वचन तुम खिरै अगाध, सब भाषा गर्भित हित साध ॥३५॥

विकसित-सुवरन-कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहै धरो, तहै सुर कमल रचाहिं ॥३६॥

ऐसी महिमा तुम विष्णु, ओर धैर नहिं कोय।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय ॥३७॥

मद - अवलिप्ति - कपोल - मूल अलि-कुल झंकरि।
 तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्भृत आति धरि॥
 काल-वरन विकराल, कालवत सन्मुख आये।
 ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजाये॥
 देखि गयंद न भय करै तुम पद-महिमा लीन।
 विपतिरहित संपत्तिसहित वरते भक्त अदीन॥३८॥

अति मद-मत्त-गयंद कुंभथल नखन विदाई।
 मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगाई॥
 बांकी दाढ विशाल बदन में रसना लोलै।
 भीम भयानक रूप देखि जन थरहर ढोलै॥
 ऐसे मृगपति पगतलैं जो नर आयो होय।
 शरण गये तुम चरणकी बाधा करै न सोय॥३९॥

प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटंतर।
 बर्मैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरंतर॥
 जगत समस्त निगल्ल भस्मकर हैगी मानो।
 तडतडाट दव-अनलजोर चहुंदिशा उठानो॥
 सो इक छिनमें उपशमें नाम-नीर तुम लेत।
 होय सरोबर परिनमै विकसित कमल समेत॥४०॥

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलंता।
 रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलंता॥
 फण को उंचो करै वेग ही सन्मुख धाया।
 तब जन होय निशंक देख फणिपति को आया॥

जो चांपै निज पगतलैं व्यापै विष न लगार।
नाग दमनि तुम नामकी हैं जिनके आधार॥४१॥

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम।
धनसे गज गरजहिं मत्त मानों गिरि जंगम।।
अति कोलाहल माहिं बात जहुँ नाहिं सुनीजै।
राजनको परचंड देख बल धीरज छीजै।।
नाथ तिहारे नामतै सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं अंधकार विनशाय॥४२॥

मारै जहां गयंद कुंभ हथियार विदारै।
उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारै।।
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बल पूरे।
तिस रनमें जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे।।
दुर्जय अरिकुल जीतके जय पावै निकलंक।
तुम पद-पंकज मन बसै ते नर सदा निशंक॥४३॥

नक्र चक्र मगरादिध मच्छकरि भय उपजावै।
जामै बडवा अग्नि दाहतै नीर जलावै।।
पार न पावै जास थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अतिगंभीर लहरिकी गिनति न ताकी।।
सुखसों तिरै समुद्रको जे तुम गुन सुमराहिं।
लोलक-लौलनके शिखर पार यान ले जाहिं॥४४॥

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं।
वात पित्त कफ कुष्ट आदि जो रोग गहै है।

सोचत रहें उदास नाहिं जीवन की आशा ।
 अति धिनावनी देह धैर दुर्गंधि-निवासा ॥
 तुम पद-पंकज-धूलको जो लावै निज-अंग ।
 ते निरोग शरीर लहि छिनमें होय अनंग ॥४५॥

पांव कंठतै जकर बांध सांकल अति भारी ।
 गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं जिन जांघ विदारी ॥
 भूख प्यास चिंता शरीर दुख जे विललाने ।
 सरन नाहिं जिन कोय भूपके बंदीखाने ॥
 तुम सुमरत स्वयमेव ही बंधन सब खुल जाहिं ।
 छनमें ते संपति लहें चिंता भय विनसाहिं ॥४६॥

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल ।
 फणपति रण परचंड नीर-निधि रोग महाबल ॥
 बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै ।
 तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै ॥
 इस अपार संसार में शरन नाहिं प्रभु कोय ।
 यातैं तुम पद-भक्त को भक्ति सहाई होय ॥४७॥

ह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन संवारी ।
 विविध-वर्णमय-पुहुप गूँथ मैं भक्ति विथारी ॥
 जे नर पहिरे कंठ भावना मन मैं भावें ।
 'मानतुंग' ते निजाधीन शिव-लछमी पावें ।
 भाषा भक्तामर कियो 'हेमराज' हित हेत ।
 जे नर पढ़े सुभावसो ते पावै शिव-खेत ॥४८॥